न्यायविद्या की प्रगति कैसे हो ?

-प्रो. वीरसागर जैन

न्यायविद्या एक अद्‌भुत विद्या है, अमृतविद्या है | आचार्य अनन्तवीर्यस्वामी ने इसे अमृतविद्या ही कहा है | यथा-

अकलंकवचोम्भोधेरुद्‌ध्रे येन धीमता |

न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने || -प्रमेयरत्नमाला, मंगलाचरण, 2

अर्थ- जिन्होंने आचार्य अकलंक के वचनरूपी समुद्र को मथकर **न्यायविद्यारूपी अमृत** का उद्धार किया है, उन बुद्धिमान आचार्य माणिक्यनंदी को मेरा नमस्कार हो |

न्यायविद्या को प्राचीन काल में आन्वीक्षिकी, हेतुविद्या आदि अनेक नामों से जाना जाता था और यह सर्व विद्याओं की प्रकाशक मूलाधारभूत विद्या मानी जाती थी | यथा-

प्रदीप: सर्वविद्यानामुपाय: सर्वकर्मणाम् |

आश्रय: सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता || -चाणक्य, अर्थशास्त्र, विद्योद्देश्य प्रकरण,2

प्राचीन काल में इस न्यायविद्या को आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जीवन के दोनों पक्षों को निर्मल करनेवाली होने के कारण सभी लोग अनिवार्यत: पढ़ा करते थे, किन्तु खेद है कि वर्तमान में इसका दिन-प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है | अभी थोड़े दिन पहले तक भी न्यायविद्या का जैसा अध्ययन-अध्यापन होता था, वैसा भी अब नहीं हो रहा है | स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही जा रही है |

किन्तु अभी यहाँ इस विषय में अधिक चिन्ता प्रकट करने की बजाय इस विषय पर कुछ चिन्तन करते हैं कि न्यायविद्या की प्रगति कैसे हो | मैं लगभग 42 वर्ष से न्यायविद्या के अध्ययन-अध्यापन से जुड़ा हुआ हूँ और इस अवधि में मैंने जो कुछ अनुभव इस सम्बन्ध में किये हैं, आज मैं उन्हीं के आधार पर अपने कुछ सुझाव आप सबके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि यदि हम इन पर ध्यान दें तो न्यायविद्या की काफी प्रगति हो सकती है | सुधी जनों से निवेदन है कि वे इन पर अवश्य चिन्तन करें और यदि इनमें कुछ संशोधन-परिवर्द्धन हो तो वह भी करें, परन्तु न्यायविद्या को क्षीण होने से बचाने में अपना कुछ-न-कुछ योगदान अवश्य करें | न्यायविद्या हमारी अनमोल विरासत है |

न्यायविद्या की प्रगति हेतु मेरा सबसे **पहला सुझाव** तो यह है कि इसे व्यावहारिक बनाया जाए | बनाया क्या जाए, यह तो व्यावहारिक ही है, आवश्यकता केवल इतनी है कि इसकी व्यावहारिकता को हम गहराई से प्रकाशित करें, हाईलाइट करें, ताकि समाज और शासन आदि में भी इसकी स्वीकार्यता बढ़े | (समाज और शासन में स्वीकार्यता बढ़ने से इसकी विशेष प्रगति होगी | दरअसल, पहले तो अधिकारी/नेतागण इसकी उपादेयता को जानते थे, अत: इस पक्ष को उभारने की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती थी, परन्तु अब वे लोग उसे बिलकुल नहीं

समझ पा रहे हैं, अपितु अनेक लोग तो उसे अनुपयोगी या निरर्थक तक कहने लगे हैं, अत: उन्हें इस पक्ष से परिचित कराना अत्यंत आवश्यक है, ताकि उनका भी समर्थन प्राप्त हो |

उनके अतिरिक्त अन्य सबको भी, इसके विद्यार्थियों को भी न्यायविद्या की व्यावहारिकता को सशक्त रीति से समझाना चाहिए, तभी उनका मन इसमें अच्छी तरह लगेगा | न्यायविद्या से केवल पारलौकिक लाभ ही नहीं होते, अपितु व्यक्ति एवं समाज सभी का बड़ा हित होता है |) समाज में सर्वत्र अन्धविश्वास, पक्षपात, पूर्वाग्रह, संकीर्णता आदि अनेक दोष व्याप्त हैं, न्यायविद्या के अध्ययन से ये सब सहज ही दूर किये जा सकते हैं और एक सुन्दर समाज की संरचना की जा सकती है | न्यायविद्या के अध्ययन से व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा होता है और उसकी वाणी, लेखनी आदि भी अत्यंत व्यवस्थित होती है | समाज में दो प्रकार के लोग होते हैं | एक कहते हैं- मेरा सो खरा और दूसरे कहते हैं कि खरा सो मेरा | पहले प्रकार के लोग समाज में अनेक समस्याओं को जन्म देते हैं, क्योंकि वे कोई संविधान नहीं मानते | स्वस्थ समाज की रचना दूसरे प्रकार के लोगों से ही होती है और वे न्यायविद्या के अध्ययन से ही तैयार होते हैं | मतभेद होते हुए भी मनभेद न रखने की कला न्यायविद्या से ही अच्छी आती है, जो एक स्वस्थ एवं सुन्दर समाज की अनिवार्य शर्त है |

न्यायविद्या के अध्ययन से और भी अनेकानेक लाभ हमें हमारे व्यावहारिक/दैनिक जीवन में होते हैं, हमें उन्हें भलीभांति प्रकाशित करना चाहिए, उन पर राष्ट्रिय संगोष्ठी, व्याख्यान आदि आयोजित करना चाहिए | तथा सभी लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहिए | मैंने भी इस विषय पर अनेक कक्षाएं ली हैं और एक-दो लेख भी लिखे हैं, जैसे कि- 'न्यायशास्त्र के अध्ययन की दैनिक/व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता' आदि |

न्यायविद्या की प्रगति हेतु मेरा **दूसरा** प्रमुख सुझाव यह है कि इसे एकदम सरल बनाया जाना चाहिए | यह वास्तव में बहुत कठिन है भी नहीं | जो लोग इसे ठीक से समझते नहीं हैं, वे ही इसे कठिन रूप में प्रस्तुत करते हैं | न्यायविद्या को सरल बनाने के लिए आधुनिक युग में तो वैसे भी अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हो गई हैं- कम्प्यूटर आदि के माध्यम से, हमें उनका भी लाभ उठाना चाहिए | मैंने देखा है कि कम्प्यूटर से पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन आदि से समझाने पर विषय बहुत सरल और रोचक हो जाता है | किसी भी विषय के भेद-प्रभेद आदि सब बहुत आसानी से समझ में आ जाते हैं |

न्यायविद्या को सरल बनाने के लिए मेरे ख्याल से निम्नलिखित दो-तीन कार्य और भी किये जा सकते हैं | जैसे कि- प्रारम्भिक एक-दो कक्षाओं में छात्रों को सभी विविध दर्शनों का प्रारम्भिक परिचय दे देना चाहिए, क्योंकि वही न आने के कारण न्यायशास्त्र विशेष कठिन लगता है | इसी प्रकार हमें अपनी समझाने की शैली भी एकदम सरल कर देनी चाहिए, उसके दृष्टान्त आदि भी समसामयिक ही देना चाहिए | प्राचीन काल में माणिक्यनंदी, धर्मभूषण यति आदि आचार्यों ने भी अपने हिसाब से उसे अधिकतम सरल करके ही प्रस्तुत किया था, एकदम बलावबोध शैली में, जैसा कि उनके 'लघीयस:', 'बालप्रबुद्धये' आदि पदों से भी ज्ञात होता है | उन्होंने भाषा, शैली, दृष्टान्त आदि सब अपने समय के अनुरूप एकदम सरल कर दिए थे, ऐसा आग्रह नहीं रखा था कि अकलंक तो ऐसे समझाते थे, मैं सरल कैसे कर सकता हूँ |

न्यायविद्या को सरल बनाने के लिए प्रश्नोत्तर शैली का आश्रय लेना भी लाभदायक सिद्ध हो सकता है | हमें उसका भी प्रयोग करना चाहिए | जैसे कि मैंने अपनी कृति 'न्याय-मन्दिर' में किया और वह बहुत सफल भी

रहा | इसी प्रकार के अन्य भी कुछ प्रयोग किये जा सकते हैं, परन्तु कैसे भी करके न्यायविद्या को सरल करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि दिन-प्रतिदिन लोगों की बुद्धि एवं शक्ति क्षीण होती जा रही है, हमें उसका अवश्य ध्यान रखना होगा |

न्यायविद्या को सरल करने के लिए एक उपाय यह भी किया जा सकता है कि प्रथम अध्ययन के समय हम उसकी सूक्ष्म ऊहापोह में छात्रों को न उलझाएँ, केवल उसकी मूल संरचना (basic structure) को ही स्पष्ट करें | बाद में उसकी रुचि एवं क्षमता के अनुसार द्वितीय-तृतीय अध्ययन किये जा सकते हैं |

न्यायविद्या की प्रगति हेतु मेरा **तीसरा** प्रमुख सुझाव यह है कि हमें इसे अध्यात्मविद्या से जोड़ना चाहिए | यद्यपि न्यायविद्या मूलतः अध्यात्मविद्या से जुड़ी हुई ही है, बहुत गहराई से जुड़ी हुई है, **जैसा कि आचार्य सोमदेवसूरि ने 'नीतिवाक्यामृत' (5/63) में स्पष्ट शब्दों में कहा है-**

"आन्वीक्षिक्यध्यात्मविषये |"

अर्थ- आन्वीक्षिकी अर्थात् न्यायविद्या आध्यात्मिक विषय में उपयोगी है |

परन्तु आज हम उसे भूल-से गये हैं और इसीलिए न्यायविद्या लोगों को अत्यन्त नीरस एवं अनुपयोगी भासित होने लगी है | तथा जो चीज नीरस एवं अनुपयोगी भासित होगी, उसमें किसी का कैसे मन लगेगा ? अत: मैं समझता हूँ कि हमें न्यायविद्या को अध्यात्मविद्या से गहराई से जोड़ना चाहिए | मैंने इस विषय पर भी अनेक व्याख्यान किये हैं और एक-दो लेख भी लिखे हैं, जैसे कि- 'समयसार में न्यायशास्त्र के प्रयोग', 'आत्मानुभूति में न्यायशास्त्र के अध्ययन की उपयोगिता' आदि | मुझे विश्वास है कि यदि हम न्यायविद्या को अध्यात्मविद्या से जोड़कर प्रस्तुत करेंगे तो इसकी बहुत प्रगति होगी |

न्यायविद्या की प्रगति हेतु मेरा **चौथा** प्रमुख सुझाव, जो इसी से सम्बद्ध है, यह है कि हमें न्यायविद्या की आवश्यकता और उपयोगिता पर विशद प्रकाश डालना चाहिए, उसको बारम्बार रेखांकित करना चाहिए; क्योंकि सामान्य जन तो उसे जानते ही नहीं हैं, अनेक विद्वज्जन भी नहीं जानते हैं -ऐसा मेरा अनुभव है | मैंने तो बल्कि ऐसे-ऐसे विद्वज्जन देखे हैं जो स्वयं को बड़े आध्यात्मिक समझते हैं और फिर भी इस न्यायविद्या को आत्मकल्याण में अनुपयोगी या अनावश्यक बताते रहते हैं | न केवल अनुपयोगी और अनावश्यक, बाधक तक बता देते हैं | वे न स्वयं न्यायशास्त्र पढ़ते हैं और न दूसरों को पढ़ने देते हैं | अत: हमें न्यायविद्या की आवश्यकता और उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डालना चाहिए, क्योंकि जबतक इसकी आवश्यकता और उपयोगिता समझ में नहीं आएगी तबतक इसमें किसी का मन ठीक से नहीं लगेगा | मैंने इस विषय पर भी अनेक व्याख्यान किये हैं और एक-दो लेख भी लिखे हैं | एक लेख तो पर्याप्त विस्तार से विविध युक्ति-प्रमाण-पुरस्सर यही बताने के लिए लिखा है कि न्याय के बिना तत्त्वाधिगम सम्भव ही नहीं है और तत्त्वाधिगम के बिना तत्त्वानुभव सम्भव नहीं है, अत: न्याय पढ़ना अनिवार्य है | इस सम्बन्ध में और भी अनेक बातें हैं, जो मैं 'न्यायशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता' शीर्षक लेख में कह चुका हूँ, अत: यहाँ दोहराने का मन नहीं कर रहा है, जिज्ञासु उस लेख को अवश्य पढ़ें |

न्यायविद्या की प्रगति हेतु मेरा **पाँचवाँ** सुझाव यह है कि न्यायविद्या के सम्बन्ध में एक बड़ी भ्रान्ति चलती है कि यह तो वाद-विवाद या शास्त्रार्थ की विद्या है, जो प्राचीन काल में चलती थी और जिसमें पण्डित लोग

स्वमतमण्डन एवं परमतखण्डन करते थे और फिर उसके आधार पर उनकी हार-जीत का फैसला होता था, जीतनेवाले को पुरस्कार और हारनेवाले को तिरस्कार/दंड मिलता था | जीतनेवाले का बहुत सम्मान होता था और हारनेवाले का बहुत अपमान होता था | मैं समझता हूँ कि लोगों की यह भ्रान्ति अवश्य दूर होनी चाहिए, क्योंकि इस भ्रान्ति के कारण न्यायविद्या का बड़ा ह्रास हुआ है | आज किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को यह सब उचित नहीं प्रतीत होता | आज की नई पीढ़ी भी इस कार्य को बिलकुल पसंद नहीं करती है | यद्यपि मैं मानता हूँ कि प्राचीन काल में ऐसे भी दिन आये थे, किन्तु यह न्यायविद्या का मूल स्वरूप नहीं था, अपितु विकृत स्वरूप था | आचार्य अकलंकदेव भी उसे देखकर अत्यन्त विगलित हुए थे, जैसा कि 'न्यायविनिश्चय' के निम्नलिखित श्लोक से अभिव्यक्त होता है-

अत: हमें इस बात को सबको भलीभांति समझाना चाहिए कि न्यायविद्या वाद-विवाद के लिए नहीं, तत्त्वज्ञान के लिए है | यह कषाय बढ़ानेवाली निम्नविद्या नहीं, अपितु कषाय मिटानेवाली अमृतविद्या है |

इस प्रकार मैंने यहाँ न्यायविद्या की प्रगति हेतु कुछ प्रमुख सुझाव प्रस्तुत किये हैं | इनके अतिरिक्त भी अनेक सुझाव हो सकते हैं, परन्तु वे सब तभी ठीक से समझ में आ सकते हैं, जब न्यायविद्या के अनुरागी लोग संगठित होकर विचारविमर्श करें | मुझे लगता है कि हमें न्यायविद्या के संरक्षण-संवर्द्धन हेतु एक संगठन बनाना चाहिए | लोक में हर कार्य के लिए संगठन बने हुए हैं, एक-एक कार्य के लिए अनेक-अनेक संगठन बने हुए हैं, परन्तु इसका कोई संगठन नहीं है | न्यायविद्या के संगठन को न्यायविद्या के संरक्षण-संवर्द्धन हेतु विचार-विमर्श के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे पाठ्यक्रम भी बनाना चाहिए और उनका अध्ययन करनेवालों को कुछ उपाधियाँ भी देनी चाहिए, जैसे कि पहले 'न्यायतीर्थ' आदि की उपाधियाँ दी जाती थीं | इसी प्रकार कभी-कभी साप्ताहिक कार्यशाला आदि का भी आयोजन करना चाहिए | न्याय का एक ओरिएंटेशन कोर्स भी लोगों को कराया जा सकता है, जिसमें न्याय की उपयोगिता, उसका प्राथमिक परिचय, उसके प्रमुख ग्रन्थ-ग्रन्थकार, उसकी प्रमुख शब्दावली, लक्षणावली आदि विषयों का ज्ञान कराया जाए | इसी प्रकार और भी अनेक सुझाव हो सकते हैं, परन्तु अभी इतना ही कहकर मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ |